ॐ

गुरवे

२३२

तत्त्वबोधः

भार्गवपुस्तकालय,
गायघाट, वाराणसी १.

* श्रीः *

तत्त्वबोधः

श्रीमच्छङ्करावतार श्रीयुत १०८ श्रीशङ्कराचार्य-
भगवत्पादविरचितः ।

व्याकरणाचार्यपण्डितमदनमोहनपाठककृत-
भाषानुवादसहितः ।

प्रकाशक-
भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.
ब्राञ्च-कचौड़ीगली, बनारस ।

अस्य सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः ।

संवत् २०१२] [मूल्य ।)

उपोद्घात

संसारी मनुष्यों को सदा सुख की इच्छा बनी रहती है। वे सद
ही सुख के लिये लालायित रहते हैं। कोई पुत्र के लिये दुःखी रह
हैं, और कोई धन के लिये माथा पच्ची किया करते हैं। इनमें कित
ही पुत्रवान् भी हो जाते हैं, और कितने धनवान् भी हो जाते हैं
तब भी वे दुःखी ही दिखाते हैं। जो कुछ ये चाहते थे उसे पाकर भ
इन्हें दुःखी देख यह प्रश्न होता है कि क्या हम जिसे सुख देनेवाल
समझते थे वह सुख देनेवाला नहीं हैं? इस प्रश्न के उत्तर में ह
बहुत कुछ हाथ-पैर मार कर भी जब कोई सहज उपाय नहीं देख
तब तत्त्वदर्शी गुरु की शरण ही एक आधार दिखाता है। कृपालु गु
हमारे ऐसे कृतघ्नों पर भी दया करके योग्यता के अनुसार हमें वे
के मुख्य सिद्धान्तों का उपदेश करते हैं जिसके विचार से हम सुख
रूप मोक्षपद पाते हैं।

जिन वैदिक सिद्धान्तों से हमें सुख होता है, उन्हें विद्वान् उ
निषद् अथवा वेदान्त कहते हैं। वेदान्त-शास्त्र बड़ा गहन और विचा
करने का विषय है। वह विषयी लोगों के मन में सहज ही में ना
आता, यह विचारकर श्रीमान् १०८ भगवान् शङ्कराचार्यजी ने अल्प
लोगों के लिये 'तत्त्वबोध' नाम का एक छोटा ग्रन्थ बना दिया है
इस उपाय से मानो वेदान्त समुद्र को आचार्यपाद ने बावली ब
दिया। सर्वसाधारण को समझने के लिये मूल के साथ इस अप
ग्रन्थ का सरल भाषानुवाद भी प्रकाशित किया गया है।

आपका हितकर—

मदनमोहन पाठक।

* श्रीगणेशाय नमः *

अथ तत्त्वबोधः ।

हम आस्तिक लोग जब किसी कार्य को आरम्भ करते हैं तब मङ्गलाचरण अवश्य करते हैं। इस विषय में हमारा विश्वास है कि मङ्गलाचरण में दो बात होती है। पहिली बात विघ्न का नाश और दूसरी उस कार्य की समाप्ति जिसके प्रारम्भ में हमने मङ्गलाचरण किया है। हमारा सिद्धान्त है कि प्रत्येक कार्य की सिद्धि में जैसे उसकी सामग्री की आवश्यकता है वैसे ही विघ्नों का नाश होना भी आवश्यक है। जैसे उन २ सामग्रियों से वे २ कार्य सिद्ध होते हैं वैसे विघ्नों के न होनेसे भी कार्य सिद्ध होते हैं, जैसे ग्रन्थसमाप्ति में कारण सामग्री बुद्धि कल्पना और सदसद्विवेक आदि हैं। वैसे ही एक विघ्न का न होना भी है। इसलिये ग्रन्थ के आरम्भ में मङ्गल करना आवश्यक जान पड़ता है। परिपाटी के पालन से हमें एक लाभ और होता है जिसे हम लोग परम्परा कहते हैं। यदि हम लोग मङ्गलाचरण करते हैं तो हमें यह विश्वास होता है कि यदि कदाचित् हमारे शिष्यगण भी ग्रन्थ बनावेंगे तो वे भी मङ्गलाचरण करेंगे। यही कारण हुआ कि हम मङ्गलाचरण को ग्रन्थ का एक अङ्ग मानकर उसे ग्रन्थ के आदि में मिला देते हैं और उससे एक उत्तम परिपाटी का निर्वाह करते हैं। अब हमें यह भी विचारना आवश्यक है कि हम किस देवता का मङ्गलाचरण करें? इस विचार का निर्णय ग्रन्थ के विषय पर ही निश्चित है। अतः जिन ग्रन्थों में जो विषय हो उसीके अनुसार मङ्गलाचरण भी होना उचित है। इसी अनादि

सिद्ध परिपाटी का पालन करने की इच्छा से भगवान् शङ्कराचार्यजी (तत्त्वबोध) के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हैं।

अथ मङ्गलाचरणम्।

वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं नत्वा ज्ञानप्रदं गुरुम्।
मुमुक्षूणां हितार्थाय तत्त्वबोधोऽभिधीयते ॥१॥

अर्थ—मोक्ष साधन ज्ञान के देनेवाले योगियों में श्रेष्ठ वासुदेवेन्द्र योगिराज गुरु को प्रणाम करके, मोक्षपद की इच्छा करनेवाले मनुष्यों के हित के लिये तत्त्वबोध का कथन करता हूँ ॥ १ ॥

साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणां मोक्षसाधनभूतं तत्त्वविवेकप्रकारं वक्ष्यामः ॥ २ ॥

अर्थ—मोक्षपद की प्राप्ति के चार प्रकार के उपायों को साधने वाले अधिकारी जनों के लिये जो मोक्ष में साधन हैं उन तत्त्वों के विचार को कहता हूँ। जगत् का उपादान-कारण सत्-चित्-आनन्द रूप परमेश्वर है। वही माया के आवेश से जीव अवस्था को प्राप्त होता है और पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश में अपना रूप देखता है। तत्त्व के बोध से वह पञ्चमहाभूत से अपने को अलग समझता है। इससे तत्त्वबोध का प्रकार कहना अति आवश्यक है ॥२॥

साधनचतुष्टयं किम्? नित्या-नित्यवस्तुविवेकः, इहामुत्रार्थफलभोगविरागः, शमदमादिषट्कसम्पत्तिः, मुमुक्षुत्वं चेति ॥ ३ ॥

अर्थ—मोक्ष के चारों साधन कौन कौन हैं?, नित्य पदार्थ और अनित्य पदार्थ का भिन्न भिन्न ज्ञान, इस लोक के और परलोक के

पदार्थ और उनसे होने वाले फलों में वैराग्य, शम, दम, आदि छओं पदार्थों का सम्पादन और मोक्षपद की इच्छा, ये ही चारों साधन हैं ॥ ३ ॥

नित्यानित्यवस्तुविवेकः कः ?, नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म, तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यम्, अयमेव नित्यानित्य-वस्तुविवेकः ॥ ४ ॥

अर्थ—नित्य पदार्थ और अनित्य पदार्थ का विवेक किसको कहते हैं ? नित्य पदार्थ केवल ब्रह्म है, उसको छोड़कर और जितने पदार्थ हैं सब अनित्य अर्थात् मिथ्या वा असत् हैं—इसी ज्ञान को नित्यानित्य-वस्तु-विवेक कहते हैं ॥ ४ ॥

विरागः कः ? इह-स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ—विराग किसे कहते हैं ?, इस लोक के और स्वर्ग आदि परलोक के सुख आदि भोग की इच्छा का त्याग करना। अर्थात् इस लोक और परलोक के सुख-भोग की वासना को हटा देना-इसे विराग कहते हैं ॥ ५ ॥

शमादिसाधनसम्पत्तिः का ?, शमो दम उपर-तिस्तितिक्षा श्रद्धा समाधानं चेति ॥ ६ ॥

अर्थ—शम आदि साधनों की सम्पत्ति का क्या अर्थ है ? शम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान, इन छओं साधनों का होना शम आदि साधन-सम्पत्ति कहाती है। शम-शान्ति, दम-इन्द्रियों का रोकना, उपरम-कर्तव्य का अनुष्ठान, तितिक्षा-शीतादि का सहना, श्रद्धा-गुरु आदि के वाक्य में विश्वास, समाधान-चित्त की एकाग्रता, ये ही छः साधन हैं ॥ ६ ॥

शमः कः ?, मनोनिग्रहः। दमः कः ?, चक्षुरादि-बाह्येन्द्रियनिग्रहः। उपरमः कः ?, स्वधर्मानुष्ठानमेव। तितिक्षा का ?, शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम्। श्रद्धा कीदृशी ?, गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा। समाधानं किम् ?, चित्तैकाग्रता ॥ ७ ॥

अर्थ—शम किसे कहते हैं ? मन रोकने को शम कहते हैं। दम का क्या अर्थ है ?, नेत्र, कान, जिह्वा, घ्राण और त्वचा आदि बाहरी इन्द्रियों के रोकने को दम कहते हैं। उपरम किसे कहते हैं ?, अपने निज धर्म का ही अनुष्ठान करना। अर्थात् शब्द आदि विषयों से इन्द्रियों को रोक कर और सब लौकिक विचारों से हटा कर केवल आत्मविचार में तत्पर रहना, इसे उपरम कहते हैं। तितिक्षा किसे कहते हैं ?, शीत, उष्ण, सुख, दुःख, मान, अपमान आदि को धैर्य से सह लेना, इसे तितिक्षा कहते हैं। श्रद्धा कौन सी वस्तु का नाम है ?, गुरु के वाक्यों को और वेदान्त के वाक्यों को विश्वास पूर्वक यथार्थ समझना श्रद्धा कहाती है। समाधान का क्या अर्थ है ?, चित्त की एकाग्रता को अर्थात् गुरु और अधिकारी को बताना समाधान कहाता है। इन्हें ही शम आदि छः साधन कहते हैं ॥ ७ ॥

मुमुक्षुत्वं किम् ?, मोक्षो मे भूयादितीच्छा ॥८॥

अर्थ—मुमुक्षुत्व का क्या अर्थ है ?, मेरा मोक्ष होवे ऐसी इच्छा का होना। अर्थात् 'मुझे किसी प्रकार के सांसारिक दुःखों से संयोग न हो' इस इच्छा वाले को मुमुक्षु कहते हैं ॥ ८ ॥

एतत्साधनचतुष्टयम्। ततस्तत्त्वविवेकस्याधि-

कारिणो भवन्ति। तत्त्वविवेकः कः?, आत्मा सत्यस्तदन्यत्सर्वं मिथ्येति ॥ ९ ॥

अर्थ—ये चारों मोक्ष के साधन हैं। इनकी साधना के अनन्तर तत्त्वविवेक के अधिकारी होते हैं। अर्थात् इन चारों की साधना से वह तत्त्वज्ञान होता है जो महाभूतों से आत्मा को भिन्न सिद्ध कर देता है। तत्त्वविवेक किसे कहते हैं?, आत्मा सत्य है, और उसके सिवाय और जितने जगत् के पदार्थ हैं वे सब मिथ्या हैं, इसी को तत्त्वविवेक कहते हैं ॥ ९ ॥

आत्मा कः?, स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्यतिरिक्तः पञ्चकोशातीतः सन्नवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपः सन् यतिष्ठति स आत्मा ॥ १० ॥

अर्थ—आत्मा किसे कहते हैं?, स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर से अन्य, अन्नमय आदि पाँचों कोशों से दूर और जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन अवस्थाओं का साक्षी होकर जो सत् चित् और आनन्दस्वरूप हो रहता है उसे आत्मा कहते हैं। अर्थात् आत्मा वह है जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से अलग है, जो अन्नमय प्राणमय आदि पाँचों कोशों से दूर है, जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का साक्षी है और जो सत् चित् आनन्द रूप है ॥ १० ॥

स्थूलशरीरं किम्?, पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यसुखदुःखादिभोगायतनं शरीरम्। अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यतीति षड्विकारवदेतत्स्थूलशरीरम् ॥ ११ ॥

अर्थ—स्थूल शरीर किसे कहते हैं ?, पञ्चीकृत पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों महाभूतों से किया गया, कर्मों के द्वारा उत्पन्न सुख और दुःख आदि के भोगने का प्रधान आश्रय, नाश होने वाला और स्थिति, उत्पत्ति, वृद्धि, घटना-बढ़ना, ढीला पड़ना और नाश रूप छओं विकार वाला स्थूल शरीर कहलाता है। तात्पर्य यह है कि पृथिवी आदि पाँचों महाभूतों के पञ्चीकरण से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। महाभूतों के पञ्चीकरण का यह प्रकार है कि प्रथम आकाश को दो भागों में बाँटकर एक भाग को अलग रख देना। फिर दूसरे भाग को चार भाग में बाँटकर अलग रखे हुए आधे भाग को इसी प्रकार बाँटे गये वायु के भागों में मिला देना। इसी भाँति वायु को विभाग करके उसे तेज भाग में मिला देना। तेज भाग को बाँट कर जल भाग में मिला देना। जल को बाँट कर पृथिवी में मिला देना। इन्हीं भागों के मिलाव को पञ्चीकरण कहते हैं। इसी पञ्चीकरण अवस्था का नाम स्थूलशरीर है। जब फिर पृथिवी आदि भूतों के भागों को अलग अलग करके अपने अपने कारण महाभूतों में लीन कर देते हैं तब स्थूलशरीर का नाश हो जाता है। इस स्थूलशरीर के सहायक उपादान कारण शुभ अशुभ कर्म हैं। शुभ अशुभ कर्मों से सुख-दुःख का भोग उत्पन्न होता है। स्थूलशरीर इनका भोग करता है। इस स्थूलशरीर की छः अवस्था होती है। प्रथम अवस्था अस्ति, है। अस्ति शब्द का अर्थ है सत्ता अर्थात् होना। द्वितीय अवस्था जनन, अर्थात् उत्पन्न होना है। तृतीय अवस्था वर्धन, अर्थात् कदाचित् बढ़ना और कदाचित् घटना। चतुर्थ अवस्था विपरिणाम, अर्थात् क्रम से बढ़ना। पञ्चम अवस्था अपक्षय, अर्थात् वृद्ध आदि होने पर शरीर का शिथिल होना। और छठवीं अवस्था नाश, अर्थात् शरीर का पात होना। इसीको लोग स्थूलशरीर कहते हैं ॥ ११ ॥

सूक्ष्मशरीरं किम्, ? अपञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृतं तत्कर्मजन्यसुखदुःखादि-भोगसाधनं पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, पञ्च प्राणाः, मनश्चैकं बुद्धिश्चैका–एवं सप्तदशकलाभिः सह यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्मशरीरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सूक्ष्मशरीर किसे कहते हैं ?, अपञ्चीकृत पृथिवी आदि पाँचों महाभूतों से बना, कर्मों से उत्पन्न सुख–दुःख आदि के भोगने का साधन, पाँच ज्ञान इन्द्रियों के, पाँच कर्म इन्द्रियों के, पाँच प्राणों के, एक मन के, और एक बुद्धि के, इस भाँति सत्रह कलाओं के साथ जो रहता है, वह सूक्ष्मशरीर कहाता है। अर्थात् सूक्ष्मशरीर में पञ्चमहाभूतों के पचीस भाग नहीं होते। कर्म उसका सहायक है। वह सुख-दुःख भोग का साधन है। उसमें नेत्र, कान, जिह्वा, नासिका और स्पर्श इन्द्रियाँ रहती हैं। वाक्, हस्त, पाद, गुदा और उपस्थ भी रहते हैं। प्राण, व्यान, समान, उदान और अपान आदि प्राण भी रहते हैं। मन भी रहता है। और बुद्धि भी होती है। इन्हीं सत्रहों कला वाले शरीर को सूक्ष्मशरीर कहते हैं ॥ १२ ॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुः रसना घ्राणमिति पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि। श्रोत्रस्य दिग्देवता। त्वचो वायुः। चक्षुषः सूर्यः। रसनाया वरुणः। घ्राणस्याश्विनौ, इति ज्ञानेन्द्रियदेवताः। श्रोत्रस्य विषयः स्पर्शग्रहणम्। त्वचो विषयः स्पर्शग्रहणम्। चक्षुषो विषयो रूपग्रहणम्। रसनाया विषयो रसग्रहणम्। घ्राणस्य विषयो गन्धग्रहणमिति ॥ १३ ॥

अर्थ—श्रोत्र-कान, त्वक्-स्पर्श की इन्द्रिय, चक्षु-नेत्र, रसना-जिह्वा, और घ्राण-नासिका, ये पांचों ज्ञान इन्द्रिय हैं। श्रोत्र इन्द्रिय की देवता दिशा है। त्वक् इन्द्रिय की देवता वायु है। चक्षु इन्द्रिय की देवता सूर्य है। रसना इन्द्रिय की देवता वरुण है। घ्राण इन्द्रिय की देवता अश्विनीकुमार हैं। श्रोत्र इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान होता है। त्वक् इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान होता है। चक्षु इन्द्रिय से शुक्ल आदि का ज्ञान होता है। रसना इन्द्रिय से मधुर आदि रस का ज्ञान होता है। घ्राण इन्द्रिय से सुगन्धि और दुर्गन्धि का ज्ञान होता है ॥ १३ ॥

वाक्पाणिपादपायूपस्थानीति पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। वाचो देवता वह्निः। हस्तयोरिन्द्रः। पादयोर्विष्णुः। पायोर्मृत्युः। उपस्थस्य प्रजापतिरिति कर्मेन्द्रियदेवताः। वाचो विषयो भाषणम्। पाण्योर्विषयो ग्रहणम्। पादयोर्विषयो गमनम्। पायोर्विषयो मलत्यागः। उपस्थस्य विषय आनन्द इति ॥ १४ ॥

अर्थ—वाक् (वाणी) पाणि (हस्त) पाद (चरण) पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग) ये पाचों कर्म इन्द्रिय हैं। वाक् इन्द्रिय की देवता अग्नि है। हस्त इन्द्रिय की देवता इन्द्र है। पाद इन्द्रिय की देवता मृत्यु है। लिङ्ग इन्द्रिय की देवता प्रजापति है। वाक् इन्द्रिय से बोलते हैं। हस्त से वस्तुओं को ग्रहण करते हैं। पैर से गमन करते हैं। गुदा से मलत्याग करते हैं। लिङ्ग से विषयानन्द करते हैं ॥१४॥

कारणशरीरं किम्?, अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं शरीरद्वयकारणमात्रं सत्स्वरूपज्ञानं निर्विकल्पकरूपं यदास्त तत्कारणशरीरम् ॥ १५ ॥

अर्थ—कारण शरीर किसे कहते हैं ?, अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या रूप जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर का केवल कारण है, जो सत्स्वरूप अज्ञान है और जिसमें किसी विशेषता का ज्ञान नहीं होता उसे कारण शरीर कहते हैं। तात्पर्य यह है कि कारण शरीर कौन है ?, इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि मायाकार शरीर है। माया अनिर्वचनीय है, अर्थात् उसका स्पष्ट २ अर्थ नहीं हो सकता, न तो उसे सत् कह सकते हैं, क्योंकि ब्रह्मज्ञान होने पर उसका नाश हो जाता है, और न उसे मिथ्या कह सकते हैं, क्योंकि फिर उससे जगत् की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। इससे उसे अनिर्वचनीय स्वीकार करते हैं। माया अनादि भी है और उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती। यही माया सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर का कारण है। इसे सत्स्वरूप अज्ञान कहते हैं। इसमें किसी प्रकार के विशेष का सम्बन्ध नहीं होता। अतएव यही कारण शरीर है ॥ १५ ॥

अवस्थात्रयं किम् ?, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाः ॥१६॥

अर्थ—तीन प्रकार की अवस्थाएँ कौन कौन हैं ?, प्रथम जाग्रत् अवस्था है, द्वितीय स्वप्न अवस्था है, और तृतीय सुषुप्ति अवस्था है ॥ १६ ॥

जाग्रदवस्था का ?, श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैः शब्दादिविषयैश्च ज्ञायते इति यत्सा जाग्रदवस्था। स्थूलशरीराभिमानी आत्मा विश्व इत्युच्यते ॥१७॥

अर्थ—जाग्रत् अवस्था किसे कहते हैं ?, श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और घ्राण इन्द्रियों से जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होता है उसे जाग्रत् कहते हैं। "स्थूल शरीर मेरा है" यह अभिमान करने वाला आत्मा विश्व कहलाता है। यद्यपि स्थूल शरीराभिमानी

आत्मा अपनी अवस्था से भिन्न ही है, क्योंकि वह नित्य है और उसकी अवस्था तथा स्थूल शरीर मिथ्या है, तो भी स्थूल शरीर का अभिमान करने से आत्मा का नाम विश्व पड़ जाता है ॥ १७ ॥

स्वप्नावस्था का ?, इति चेत् जाग्रदवस्थायां यद् दृष्टं यच्छ्रुतं तज्जनितवासनया निद्रासमये यः प्रपञ्चः प्रतीयते सा स्वप्नावस्था । सूक्ष्मशरीराभिमानी आत्मा तैजस इत्युच्यते ॥ १८ ॥

अर्थ—स्वप्न अवस्था किसे कहते हैं ?, जागते हुए जो कुछ दिखाता है वा जो कुछ जाना जाता है उससे आत्मा में एक प्रकार की वासना उत्पन्न हो जाती है। निद्रा लग जाने पर इसी वासना के प्रभाव से जो संसार देख पड़ता है वही स्वप्न अवस्था है, उसी को कोई सूक्ष्म शरीर के अभिमान करने वाले प्रकाशमान भोक्ता और साक्षी आत्मा को तैजस कहते हैं ॥ १८ ॥

अतः सुषुप्त्यवस्था का ?, अहं किमपि न जानामि, सुखेन मया निद्रानुभूयत इति सुषुप्त्यवस्था । कारणशरीराभिमानी प्राज्ञ इत्युच्यते ॥ १९ ॥

अर्थ—सुषुप्ति अवस्था किसे कहते हैं, मैं कुछ नहीं जानता, "मैंने बड़े सुख से निद्रा की" यह ज्ञान जिस अवस्था में होता है वह अवस्था सुषुप्ति कहलाती है। तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति अवस्था में निद्रा-सुख के सिवाय और किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता। तब भी आत्मा का प्रकाश बना रहता है। इससे सुषुप्ति के बाद कहता है कि "मैं सुख से सोया मुझे और कुछ नहीं जान पड़ता था" यह कहना ही इस बात का साक्षी है कि उसे उस समय भी सूक्ष्म ज्ञान

था, परन्तु निद्रा के वेग से वह स्पष्टतया किसी वस्तु का ज्ञान नहीं कर सकता था। सुषुप्ति के बाद फिर पूर्व ज्ञान लौट आता है। इससे जिस समय विशेष ज्ञान न हो केवल ज्ञान ही हो उस समय को सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था को कारण शरीर और आनन्द-मयकोश भी कहते हैं। कारण शरीर के अभिमानी आत्मा को प्राज्ञ अर्थात् इन्द्रियों की सहायता के बिना ही स्वप्नाथा से वासना रूप विषयों का भोगने वाला आत्मा कहते हैं॥ १९॥

पञ्च कोशाः के ?, अन्नमयः, प्राणमयः, मनोमयः, विज्ञानमयः, आनन्दमयश्चेति॥ २०॥

अर्थ—पाँचों कोश कौन २ हैं, अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, और आनन्दमय कोश ये पाँचों कोश हैं, कोश-शब्द का अर्थ है आच्छादन करना, और ये पाँचों आत्मा के आच्छादन करने वाले हैं, इससे कोश कहाते हैं॥ २०॥

अन्नमयः कः ?, अन्नरसेनैव भूत्वा अन्नरसेनैव वृद्धि प्राप्यान्नरूपपृथिव्यां यद्विलीयते तदन्नमयः कोशः स्थूलशरीरम्॥ २१॥

अर्थ—अन्नमयकोश किसे कहते हैं ?, अन्न के रस से ही जो उत्पन्न होता है, अन्न के रस में ही जो बढ़ता है, और अन्नरूप पृथ्वी में जो लीन हो जाता है उसे अन्नमय कोश अर्थात् स्थूलशरीर कहते हैं॥ २१॥

प्राणमयः कोशः कः ?, प्राणादि-पञ्चवायवो वागादीन्द्रियपञ्चकं प्राणमयः कोशः॥ २२॥

अर्थ—प्राणमयकोश किसे कहते हैं ?, प्राण, अपान, व्यान समान और उदानरूप पाँचों प्राणवायु समूह को और वाक्, प्राणि, पाद,

पायु और उपस्थरूप पाँचों कर्मेन्द्रियों को प्राणमय कोश कहते हैं। प्राणमय कोश का दूसरा नाम क्रियाशक्ति भी है, क्योंकि प्राणमय कोश के सहारे ही शरीर की सब क्रिया होती है ॥ २२ ॥

मनोमयः कोशः कः ?, मनश्च ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं मिलित्वा भवति स मनोमयः कोशः ॥ २३ ॥

अर्थ—मनोमय-कोश किसे कहते हैं ?, मन और श्रोत्र, त्वक्, जिह्वा और घ्राणरूप पाँचों ज्ञान इन्द्रियों के मिलने से जो कोश होता है, उसे मनोमय कोश कहते हैं। इसे इच्छा-शक्ति भी कहते हैं। मनोमयकोश की सहायता से ही आत्मा में इच्छा उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि मनका स्वरूप ही सङ्कल्प-विकल्प वाला है। और सङ्कल्प विकल्प इच्छारूप है, इसलिये आत्मा में इच्छा का होना मनोमय कोश की सहायता से है ॥ २३ ॥

विज्ञानमयः कोशः कः ?, बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं मिलित्वा यो भवति स विज्ञानमयः कोशः ॥ २४ ॥

अर्थ—विज्ञानमय कोश किसे कहते हैं ? बुद्धि और श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राणरूप पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से जो प्रकाश उत्पन्न होता है, उसे विज्ञानमय कोश कहते हैं। इसका दूसरा नाम ज्ञानशक्ति भी है, क्योंकि बुद्धि और पाँचों ज्ञान इन्द्रियों की ही सहायता से आत्मा को सब पदार्थों का ज्ञान होता है ॥ २४ ॥

आनन्दमयः कः ?, एवमेव कारणशरीरभूताविद्यास्थमलिनसत्त्वं प्रियादिवृत्तिसहितं सदानन्दमयः कोशः। एतत्कोशपञ्चकम् । मदीयं शरीरं,

मदीयाः प्राणाः, मदीयं मनश्च, मदीया बुद्धिर्मदीयं ज्ञानमिति स्वेनैव ज्ञायते । तद्यथा मदीयत्वेन ज्ञातं कटककुण्डलगृहादिकं स्वस्माद्भिन्नं, तथा पञ्च-कोशादिकं मदीयत्वेन ज्ञातमात्मा न भवति ॥२५॥

अर्थ—आनन्दमय-कोश किसे कहते हैं ?, इसी भाँति कारण शरीर रूप अविद्या में रहने वाला, रज और तम गुण के संयोग से मलिन और प्रिय तथा मोद आदि वृत्तियों वाला जो कोश है उसे आनन्दमयकोश कहते हैं। इस कोश का आनन्दमयकोश नाम इसी कारण से हुआ है कि प्रिय और इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से मुदित और सुखि होता है । जब मोद और सुख होता है तो आनन्द की मात्रा अधिक मालूम पड़ती है। बस यही कारण है कि इसे आनन्दमय कोश अर्थात् अधिक आनन्दवाली अवस्था कहते हैं। पहिले कहे हुए पाँचों कोश पञ्चकोश कहे जाते हैं। आत्मा स्वयं मेरा शरीर, मेरे प्राण, मेरा मन, मेरी बुद्धि और मेरा ज्ञान यह जानता है। यही ज्ञान आत्मा को शरीर आदि से भिन्न करता है। जैसे 'मेरा गृह' 'मेरा कङ्कण' और 'मेरा कुण्डल' यह ज्ञान गृह आदि को ज्ञाता से भिन्न सिद्ध करता है, न कि वे स्वयं ज्ञाता बन जाते हैं, ऐसे ही 'मेरा शरीर' इत्यादि ज्ञान भी अपने को ज्ञाता से भिन्न सिद्ध करते हैं। यह सिद्धि 'मम' शब्द के प्रभाव से होता है। कोई भी कदापि ऐक्य होने पर मेरा शब्द नहीं कहता, जहाँ आप अलग रहकर केवल अपना सम्बन्ध जनाना रहता है, वहीं 'मेरा' शब्द बोला जाता है। मेरी पुस्तक, मेरी लेखनी, इत्यादि शब्दों का यही अर्थ है कि लेखनी मुझसे भिन्न है, परन्तु मेरा इसके साथ स्वामिपना का सम्बन्ध है। तस्मात् 'मम शब्द' के उच्चारण करने वाले के सम्बन्धी समझे जाते हैं, वैसे ही मेरे पाँचों कोश, इस प्रकार से ज्ञाता के सम्बन्धवाले पञ्चकोश,

आत्मा उनसे भिन्न है। उनका साक्षी है और पञ्चकोश माया के खिलवाड़ हैं। यह वार्ता सिद्ध हो गई ॥ २५ ॥

आत्मा तर्हि कः ?, सच्चिदानन्द-स्वरूपः ॥२६॥

अर्थ—तब आत्मा किसे कहते हैं ?, जो सत्‌रूप, चित्‌रूप और आनन्दरूप है उसे आत्मा कहते हैं ॥ २६ ॥

सत् किम् ?, कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति सत्-चित् किम् ?, ज्ञानस्वरूपः। आनन्दः कः ?, सुखरूपः। एवं सच्चिदानन्दरूपमात्मानं विजानीयात् ॥२७॥

अर्थ—सत् किसे कहते हैं ?, भूतकाल, भविष्यकाल, और वर्तमान काल में जो बिगड़ता नहीं, किन्तु सदा एक रस रहता है, उसे सत् कहते हैं। चित् शब्द का क्या अर्थ है ?, जो ज्ञानस्वरूप है, उसे चित् कहते हैं। चित् शब्द का अर्थ है प्रकाश और प्रकाश ज्ञान में रहता है। इससे ज्ञानस्वरूप से जो सब का अनुभव करने वाला है, वही चित् शब्द का अर्थ है। आनन्द शब्द का क्या अर्थ है ?, जो सदा सुखरूप है वह आनन्द का अर्थ है। अर्थात् जो कभी भी दुःख से छुआ नहीं जाता वही कूटस्थ परब्रह्म नित्यानन्दरूप है और उसे ही दूसरे शब्द में सुखरूप कहते हैं। इस भाँति आत्मा को सत्‌रूप, चित्‌रूप, और आनन्दरूप, जाने। तात्पर्य यह है कि आत्मा को नित्य ज्ञानस्वरूप और कूटस्थ समझकर जगत् को मिथ्या समझे ॥ २७ ॥

अथ चतुर्विंशतितत्त्वोत्पत्तिप्रकारं वक्ष्यामः ॥२८॥

अर्थ—अब (मैं) माया से उत्पन्न होनेवाले चौबीस तत्त्वों की उत्पत्ति के उपाय को कहता हूँ ॥ २८ ॥

ब्रह्माश्रया सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका माया अस्ति। तत आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोस्तेजः। तेजस आपः। अद्भ्यः पृथिवी ॥२९॥

अर्थ—सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणवाली और परब्रह्म के आधार पर रहने वाली माया है अर्थात् जब सत्त्व रज और तम रूप गुणों में किसी प्रकार की न्यूनता वा अधिकता नहीं जान पड़ती; किन्तु केवल समानता मालूम पड़ती है, उसी अवस्था का नाम माया है। सांख्य मत वाले इसे ही मूल प्रकृति, प्रधान और स्वभाव आदि शब्दों से स्मरण करते हैं। इसी माया के सहायक ब्रह्म के प्रभाव से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु उत्पन्न होता है, वायु से तेज उत्पन्न होता है। तेज से जल उत्पन्न होता है। जल से पृथिवी उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि माया एक प्रकार की शक्ति है। जिसके सम्बन्ध भ्रम से परब्रह्म में एक प्रकार की कर्तृता जान पड़ती है। वह कर्तृता सम्बन्ध भ्रम से जान पड़ती है, इससे प्रथम आकाश उत्पन्न होता है। आकाश एक पोला पदार्थ है, इससे उसमें वायु उत्पन्न हो जाता है। वायु और आकाश की परस्पर रगड़ से अग्नि रूप तेज उत्पन्न होता है। अग्नि की ऊष्मा से बाष्परूप जल उत्पन्न होता है। जल के परस्पर की रगड़ से पृथिवी उत्पन्न होती है॥ २९॥

एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य सात्त्विकांशाच्छ्रोत्रेन्द्रियं सम्भूतम्। वायोः सात्त्विकांशात्त्वगिन्द्रियं सम्भूतम्। अग्नेः सात्त्विकांशाच्चक्षुरिन्द्रियं सम्भूतम्। जलस्य सात्त्विकांशाद्रसनेन्द्रियं सम्भूतम्। पृथिव्याः सात्त्विकांशात् घ्राणेन्द्रियं सम्भू-

तम् । एतेषां पञ्चतत्त्वानां समष्टिसात्त्विकांशान्मनो-बुद्ध्यहङ्कारचित्तान्तःकरणानि सम्भूतानि ॥३०॥

अर्थ—इन पाँचों तत्त्वों में से आकाश के सत्त्वगुण भाग से श्रवण (कान) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। वायु के सत्त्वगुण से त्वक् (स्पर्श) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। अग्नि के सत्त्वगुण के भाग से चक्षु (नेत्र) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। जल के सत्त्वगुण भाग से रसना (जिह्वा) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। पृथ्वी के सात्त्विक भाग से घ्राण उत्पन्न है। इन आकाश आदि पाँचों तत्त्वों के मिले हुए सत्त्वगुण के भाग से मन बुद्धि अहङ्कार और चित्तरूप चार अन्तःकरण उत्पन्न हुए हैं ॥३०॥

सङ्कल्पविकल्पात्मकं मनः । निश्चयात्मिका बुद्धिः । अहङ्कर्ता अहङ्कारः । चिन्तनकर्तृ चित्तम् । मनसो देवता चन्द्रमाः । बुद्धेर्ब्रह्मा । अहङ्कारस्य रुद्रः । चित्तस्य वासुदेवः ॥ ३१ ॥

अर्थ—चार प्रकार के अन्तःकरण में मन उसे कहते हैं, जिससे यह काम करूँ ऐसा सन्देह उत्पन्न होता है। यह कार्य अवश्य कर्तव्य है, यह ज्ञान जिससे होता है, उसे बुद्धि कहते हैं। 'यह कार्य किया' यह अहङ्कार रूप ज्ञान जिससे होता है, उसे अहङ्कार कहते हैं। सम्पूर्ण पदार्थों की जिससे चिन्ता व विचार होता है उसे चित्त कहते हैं। यद्यपि अन्तःकरण एक ही है, तो भी सङ्कल्प निश्चय, अहङ्कार और चिन्तन रूप कार्य के भिन्न होने से चार प्रकार का कहा जाता है। मन की देवता चन्द्रमा है। बुद्धि की देवता ब्रह्मा है। अहङ्कार की देवता रुद्र (महादेव) हैं। चित्त की देवता वासुदेव (विष्णु) हैं ॥ ३१ ॥

एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य राजसांशाद्वागिन्द्रियं सम्भूतम् । वायो राजसांशात् पाणीन्द्रियं सम्भूतम् । वह्ने राजसांशात् पादेन्द्रियं सम्भूतम् । जलस्य राजसांशादुपस्थेन्द्रियं सम्भूतम् । पृथिव्या राजसांशाद् गुदेन्द्रियं सम्भूतम् । एतेषां समष्टिराजसांशात्पञ्चप्राणाः सम्भूताः ॥३२॥

अर्थ—इन पाँचों तत्त्वों के मध्य में से आकाश के रजोगुण भाग से वाक् (वाणी) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। वायु के रजोगुण भाग से पाणि (हाथ) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। अग्नि के रजोगुण के भाग से पाद (पैर) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। जल के रजोगुण के भाग से उपस्थ (पुरुष) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। पृथ्वी के रजोगुण के भाग से गुदा इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। इन आकाश आदि पाँचों भूतों के मिले हुए रजोगुण के भाग से प्राण, अपान, व्यान, समान, और उदान नाम के पाँच प्राण उत्पन्न हुए हैं ॥ ३२ ॥

एतेषां पञ्चतत्त्वानां तामसांशात् पञ्चीकृतपञ्चभूतानि भवन्ति ॥ ३३ ॥

अर्थ—आकाश आदि पाँचों महाभूतों के तमोगुण के भाग से पञ्चीकरण किये गये पाँच तत्त्व उत्पन्न होते हैं। इस भाँति चौबीस तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इनमें आकाश आदि पाँचों महाभूतों के सत्त्वगुण के भाग से पाँच ज्ञान इन्द्रिया और चार अन्तःकरण उत्पन्न होते हैं। सबके योग से नव तत्त्व होते हैं। इसी प्रकार आकाश आदि पाँचों के रजोगुण के भाग से पाँच कर्म इन्द्रिया और पाँच प्राण उत्पन्न

होते हैं। जोड़ने से दस तत्त्व हुए। इसी भाँति पाँचों भूतों के तमोगुण के भाग से पाँच पञ्चीकृत तत्त्व उत्पन्न हुए। अब सबकी संख्या को जोड़ने से चौबीस संख्या हो जाती है ॥ ३३ ॥

पञ्चीकरणं कथमिति चेत् ?, एतेषां पञ्चमहाभूतानां तामसांशस्वरूपम् एकमेकं भूतं द्विधा विभज्य, एकैकमर्धं पृथक् तूष्णीं व्यवस्थाप्य, अपरमपरमर्धं चतुर्धा विभज्य, स्वार्धमध्येष्वर्धेषु स्वभागचतुष्टयं संयोजनीयम्। तदा पञ्चीकरणं भवति। एतेभ्यः पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतेभ्यः स्थूलशरीरं भवति। एवं पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं सम्भूतम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—पञ्चीकरण किस प्रकार होता है ?, इसका उत्तर यह है कि इन पाँचों महाभूतों के तमोगुण रूप एक २ भूत भाग को दो २ भाग में बाँट देना। इन बाँटे हुए दोनों भागों में से एक २ भाग को चुपचाप अलग कर देना, बाकी के एक भाग को चार भागों में बाँट देना। अब अलग रखे हुए अपने आधे भाग को इन भागों में मिला देना। यही पञ्चीकरण होता है। यदि कहोगे कि इस मिलान के मिलान से तो सब महाभूतों में सबका भाग आगया। अब 'यह पृथ्वी है' 'यह आकाश है' यह भेद कैसे सिद्ध होगा ? तो इसका यह समाधान है कि, अवश्य एक २ में औरों का भाग आ जाता है। तब भी जिसमें जिसका भाग अधिक होता है उसका वही नाम होता है। जिसमें पृथ्वी का भाग अधिक रहेगा औरों का कम होगा वह पृथ्वी। इस प्रकार औरों में भी जानो। जैसे 'पहलवानों का ग्राम' यह कहने

से सुनने वाला समझता है 'इस ग्राम में पहलवान अधिक हैं, और दूसरे जाति के लोग कम हैं।' ऐसे ही महाभूतों के विषय में समझना उचित है। इन पञ्चीकृत पाँच भूतों से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। इस प्रकार पिण्ड (स्थूल शरीर) और ब्रह्माण्ड की एकता सिद्ध होती है। ब्रह्माण्ड भी स्थूल शरीर के समान पञ्चीकृत पाँच महाभूतों से उत्पन्न होता है॥ ३४॥

स्थूलशरीराभिमानी जीवनात्मकं ब्रह्मप्रतिबिम्बं भवति, स एव जीवः, प्रकृत्या स्वस्मात् ईश्वरं भिन्नत्वेन जानाति। अविद्योपाधिः सन्नात्मा जीव इत्युच्यते॥ ३५॥

अर्थ—स्थूल शरीर का अभिमान करने वाला अर्थात् उसे अपना समझने वाला ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव कहलाता है। वह अपने स्वभाव के अनुसार ईश्वर को अपने रूप से भिन्न समझता है, अविद्या के संयोग से आत्मा जीव कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जीव वस्तुतः ब्रह्म ही है परन्तु वह जब स्थूल शरीर में अभिमान करता है तब दर्पण के प्रतिबिम्ब के समान वह जीव समझा जाता है। प्रतिबिम्ब होने के कारण अज्ञान है। जैसे थाली में भरे हुए जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब (परछाहीं) देखकर लोग उसे तब तक आकाश में रहने वाले सूर्य से अलग समझते हैं जब तक थाली हटा नहीं ली जाती। परन्तु थाली के हटाते ही प्रतिबिम्ब का दर्शन नहीं होता, केवल सूर्य रह जाता है, वैसे ही स्थूलशरीर के अभिमान के नाश हो जाने पर जीव नाम नहीं रहता। तब इसका कारण अज्ञान ही है। इसी से जीवाभिमानी आत्मा ईश्वर को दूसरा समझता है। और अज्ञान से हुए कार्य को अपना कार्य समझकर उनके शुभ और अशुभ कर्मों को भोगता है। तात्पर्य यह है कि अविद्या से घिरा हुआ

आत्मा ही जीव है वह और नहीं है। जब अविद्या का नाश हो जाता है अर्थात् जब ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब वही अपने को ब्रह्म २ कहने लगता है। जैसे कोई पुरुष अपने गले में पड़े हार को अज्ञान से खोया हुआ समझकर उसे ढूँढ़ता फिरता है, परन्तु जब उसका हाथ अपने गले पर फिर जाता है तब वह चुपचाप अपनी राह लग जाता है। किसी से कुछ नहीं कहता, वैसे ही जीव भी ज्ञान होने पर अपने स्वरूप को देखने लग जाता है, इसी स्वरूप दर्शन को ब्रह्मप्राप्ति कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि माया और अविद्या ही स्थूल शरीर के अभिमान में, आत्मा के, जीव रूप प्रतिबिम्ब होने में और ब्रह्म को जीव नाम धरने में कारण है। माया और अविद्या का भेद इतना ही है कि सत्त्वगुण की अधिकता में माया नाम है, रज वा तमोगुण की अधिकता में अविद्या नाम है॥ ३५॥

मायोपाधिः सन्नीश्वर इत्युच्यते, एवमुपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेददृष्टिर्यावत्पर्यन्तं तिष्ठति तावत्पर्यंतं जन्ममरणादिरूपसंसारो न निवर्तते। तस्मात् कारणान्न जीवेश्वरयोः भेदबुद्धिः स्वीकार्या॥३६॥

अर्थ—माया में जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, उसे ईश्वर कहते हैं। इसे ही वैयासिक लोग जगत् का कर्त्ता अर्थात् निमित्त कारण कहते हैं। इस प्रकार अविद्या और माया रूप धर्म के भेद से जब तक अविद्या में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को जीव और माया में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को ईश्वर कहा करते हैं, तब तक संसार से छुटकारा नहीं होता। संसार का अर्थ है बार बार जन्म लेना और मरना। और वह तब तक बराबर बना रहता है, जब तक भेद बुद्धि नहीं छूटती। इसलिये जीव और ईश्वर को भिन्न नहीं समझना, किन्तु उन दोनों के भेद को मिथ्या समझकर एकता बुद्धि करनी॥ ३६॥

ननु साहङ्कारस्य किञ्चिज्ज्ञस्य जीवस्य निरहङ्कारस्य सर्वज्ञेश्वरस्य तत्त्वमसीति महावाक्यात् कथमभेदबुद्धिः स्यात् ? उभयोर्विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात् ॥ ३७ ॥

अर्थ—यहाँ यह शङ्का होती है कि जीव का स्वरूप अहङ्कारी और अल्पज्ञ है, और ईश्वर का स्वरूप निरहङ्कारी और सर्वज्ञ है। इन दोनों को एकता 'तत्त्वमसि' (तू वही है इस महावाक्य से कैसे होवेगा। क्योंकि यह दोनों भिन्न-भिन्न धर्म वाले हैं। जो २ भिन्न धर्म वाले होते हैं उनकी एकता कभी नहीं होती। जैसे अग्नि और जल इनकी एकता नहीं होती ॥ ३७ ॥

इति चेद्; न। स्थूलसूक्ष्मशरीराभिमानी त्वं पदवाच्यार्थः, उपाधिदशाविनिर्मुक्तसमाधिदशासम्पन्नं शुद्धं चैतन्यं त्वंपदलक्ष्यार्थः ॥ ३८ ॥

अर्थ—इस शङ्का का यह समाधान है कि स्थूल और सूक्ष्म शरीर का जो अभिमानी है वह त्वं-शब्द का वाच्य अर्थ है, और माया तथा अविद्या धर्म से रहित और समाधि अवस्था वाला शुद्ध चैतन्य त्वं-शब्द का लक्ष्य अर्थ है। अब विचारना चाहिये कि त्वं शब्द का ही दोनों अर्थ हुआ। एक वाच्य अर्थ और दूसरा लक्ष्य अर्थ, वाच्य और लक्ष्य दो नहीं होते। जैसे घट शब्द का वाच्य अर्थ घड़ा है और लक्ष्य अर्थ मृत्तिका है और जो मृत्तिका है वही घड़ा है। ऐसेही तत् शब्द का भी वाच्य अर्थ माया और अविद्या वाला जीव है और लक्ष्य अर्थ शुद्ध ब्रह्म है। अब हमें 'तत्त्वमसि' इस वाक्य की ओर देखना चाहिये कि इसका क्या अर्थ है ? इसके

विचार से हमें यह जान पड़ता है कि 'जो सर्वज्ञ ईश्वर है वही तू है' इस अर्थ के देखने से हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि जीव ब्रह्म की एकता जानने के समय दोनों में कोई धर्म का ज्ञान बाकी नहीं रहता, इससे कोई शङ्का नहीं बच जाती ॥ ३८ ॥

एवं सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वरस्तत्पदवाच्यार्थः, उपाधिशून्यं शुद्धचैतन्यं तत्पदलक्ष्यार्थः। एवं च जीवेश्वरयोश्चैतन्यरूपेणाभेदे बाधकाभावः ॥३९॥

अर्थ-इस भाँति सर्वज्ञ आदि धर्मवाला ईश्वर तत् शब्द का वाच्य अर्थ है, और सर्वज्ञत्व आदि धर्म के विना जो शुद्ध चैतन्य है वह तत् शब्द का लक्ष्य अर्थ है। इस प्रकार धर्म वाले ईश्वर की एकता में कोई दोष नहीं आता। क्योंकि धर्म को अलग कर देने में दोनों ओर चैतन्य मात्र रहता है और स्वभाव से एक ही है ॥ ३९ ॥

एवं च वेदान्तवाक्यैः सद्गुरूपदेशेन च सर्वेष्वपि भूतेषु येषां ब्रह्मबुद्धिरुत्पन्ना ते जीवन्मुक्ता इत्यर्थः ॥ ४० ॥

अर्थ-इस प्रकार 'तू वही है' 'मैं ब्रह्म हूँ' इत्यादि वेदान्त के महावाक्यों से और सद्गुरू के उपदेश से जिनको सब प्राणियों में ब्रह्मज्ञान हो गया है वही जीवन्मुक्त है। आशय यह है कि जीवन्मुक्त वही महापुरुष है, जिसे ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और श्वपाक में अपना ही स्वरूप दिखाता है। इस समय न तो उसे स्पर्शास्पर्श का विचार होता है; न वह ब्राह्मण को पवित्र और कुत्ते को अपवित्र समझता है, उसे किसी वस्तु के लाभ से न हर्ष होता है न किसी के नष्ट होने से दुःख होता है, और न वह अपने और पराये में कुछ

अन्तर समझता है। वह इस समय जनक के समान कह देता है कि 'यदि सब मिथिलापुरी ही भस्म हो जावे तो भी मेरा कुछ भी भस्म नहीं होगा' तात्पर्य यह कि वह सब द्वन्द्वों से छूट जाता है ॥ ४० ॥

ननु जीवन्मुक्तः कः ?, यथाऽहं पुरुषोऽहं ब्राह्मणोऽहं शूद्रोऽहमस्मीति दृढनिश्चयस्तथा नाहं ब्राह्मणो न शूद्रो न पुरुषः; किन्त्वसङ्गः, सच्चिदानन्दरूपः, प्रकाशरूपः, सर्वान्तर्यामी, चिदाकाशरूपोऽस्मीति-दृढनिश्चयरूपापरोक्षज्ञानवान् जीवन्मुक्तः ॥४१॥

अर्थ—जीवन्मुक्त किसे कहते हैं ?, जैसे—मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, और मैं शूद्र हूँ, यह दृढ़ निश्चय है, इसी भाँति 'न मैं ब्राह्मण हूँ, न शूद्र हूँ, और न पुरुष हूँ, किन्तु मैं किसी से सङ्ग न रखने वाला, सत् और आनन्द स्वरूप वाला, प्रकाश स्वरूप वाला, सब जीवों का अन्तर्यामी और चित्-प्रकाश स्वरूप हूँ यह दृढ़ज्ञान का प्रत्यक्ष जिसे होता है वही जीवन्मुक्त है ॥ ४१ ॥

ब्रह्मैवाहमस्मि इत्यपरोक्षज्ञानेन निखिलकर्म-बन्धविनिर्मुक्तः स्यात् ॥४२॥

अर्थ—मैं ब्रह्म ही हूँ इस प्रत्यक्ष ज्ञान के हो जाने से सब प्रकार के कर्मों के बन्धनों से छूट जाता है ॥ ४२ ॥

कर्माणि कतिविधानि सन्ति ? इति चेत् आगामिसञ्चितप्रारब्धभेदेन त्रिविधानि सन्ति ॥४३॥

अर्थ—कर्म कै प्रकार के होते हैं ? इसका उत्तर यह है कि कर्म

तीन प्रकार के हैं। प्रथम-अगामि कर्म, द्वितीय-सञ्चित कर्म, और तृतीय-प्रारब्ध कर्म हैं ॥ ४३ ॥

ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्य-पापरूपं कर्म यदिस्त तदागामीत्यभिधीयते ॥४४॥

अर्थ—ज्ञान हो जाने के बाद ज्ञानी के शरीर से किया गया जो पुण्य और पाप कर्म है वह आगामि कर्म कहा जाता है ॥४४॥

सञ्चितं कर्म किम् ?, अनन्तकोटिजन्मनां बीजभूतं सद्यत्कर्मजातं पूर्वार्जितं तिष्ठति तत्सञ्चितं ज्ञेयम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—सञ्चित कर्म किसे कहते हैं ?, अनेक करोड़ जन्मों का जो बीज अर्थात् मुख्य कारण है, और जो अनेक जन्मों से बटोरा गया है उसे सञ्चित कर्म कहते हैं ॥ ४५ ॥

प्रारब्धं कर्म किमिति चेत् ?, इदं शरीरमुत्पाद्य इह लोके एव सुखदुःखादिप्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं भोगेन नष्टं भवति । प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति ॥ ४६ ॥

अर्थ—प्रारब्ध कर्म किसे कहते हैं ?, जो कर्म इस शरीर को उत्पन्न करता है, और इस लोक में अनेक प्रकारके सुख और दुःख देता है उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। प्रारब्ध कर्म का भोग करने से ही नाश होता है, क्योंकि कहा है कि 'प्रारब्ध कर्मों का भोग करने से ही क्षय होता है।' वस्तुतः ज्ञान होने पर उसका भी नाश हो जाता है ॥४६॥

सञ्चितं कर्म ब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चयात्मकज्ञानेन नश्यति, आगामिकर्माणि ! तेन नश्यति । किञ्चागामिकर्मणां नलिनदलगतजलवत् ज्ञानिनां सम्बन्धो नास्ति ॥ ४७ ॥

अर्थ—मैं ब्रह्म ही हूँ, इस दृढ़ ज्ञान से सञ्चित कर्म नष्ट हो जाता है। आगामि कर्म का ज्ञानी के साथ उसी प्रकार सम्बन्ध नहीं होता जैसे कमल के पत्ते से जल का सम्बन्ध नहीं रहता ॥ ४७ ॥

किञ्च ये ज्ञानिनं स्तुवन्ति, भजन्ति, अर्चयन्ति तान्प्रति ज्ञानिकृतमागामिपुण्यं गच्छति । ये ज्ञानिनं निन्दन्ति, द्विषन्ति, दुःखप्रदानं कुर्वन्ति, तान्प्रति ज्ञानिकृतं सर्वमागामिक्रियमाणं यदावाच्यं कर्म पापात्मकं तद्गच्छति ॥ ४८ ॥

अर्थ—और भी जो लोग ज्ञानी की स्तुति करते हैं, सेवा करते हैं और पूजा करते हैं, ज्ञानी का किया हुआ आगामी पुण्य उन्हें मिलता है। जो लोग ज्ञानी की निन्दा करते हैं, उनसे वैर करते हैं, और उन्हें दुःख देते हैं, ज्ञानी का किया हुआ सब आगामी पाप उन्हें मिलता है ॥ ४८ ॥

तथा चात्मवित् संसारं तीर्त्वा ब्रह्मानन्दमिहैव प्राप्नोति । तरति शोकमात्मविदिति श्रुतेः ॥ ४९ ॥

अर्थ—इस प्रकार आत्मज्ञानी संसार सागर से पार होकर इसी

जन्म में ब्रह्मानन्द को पाता है। क्योंकि 'ब्रह्मज्ञानी शोसकमुद्र को पार कर जाता है' यह श्रुति में लिखा है ॥ ४९ ॥

'तनुं त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा ।
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः' ॥ ५० ॥
इतिस्मृतेश्च ॥

अर्थ—चाहे काशी में शरीरपात होवे, अथवा चाण्डाल के घर में शरीरपात होवे, ज्ञान की प्राप्ति होते ही अन्तःकरण के मलों से शुद्ध होकर ज्ञानी मुक्त होता है ॥ ५० ॥

इति तत्त्वबोधः समाप्तः ।

मुद्रक—पं० बैकुण्ठनाथ भार्गव, आनन्दसागर प्रेस, गायघाट, बनारस १.

विदुर-नीति

संस्कृत-हिन्दीटीकोपेता

यह 'नीति-शास्त्र' का अपूर्व ग्रन्थ है। इसके आधार से मनुष्य इस अथाह संसार में सकुशल जीवन व्यतीत कर ईश्वर-प्राप्ति में भी समर्थ हो सकता है। इसमें सामान्य तथा विशेष रीति से मनुष्यमात्र के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार किया है। इसका सम्बन्ध रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य होगा, क्योंकि इसमें विदुरजी ने धृतराष्ट्र के प्रति कौरव तथा पाण्डव को लक्ष्य कर सभी नीति-विषय का उपपादन किया है। संस्कृत और हिन्दी टीकाओं तथा टिप्पणी से सुशोभित होने के कारण सोने में सुगन्ध हो गया है। मूल्य १)

पर्वोत्सवविवरण

लेखक—'सुदर्शन'।

यह पुस्तक सभी वर्ग के लोगों के संग्रह करने योग्य है। इसमें पर्वों का विशेष रूप से विचार किया गया है और उन पर्वों के दिन यम, नियम पालन करने से इस लोक और परलोक के होनेवाले अनेक फल वर्णित हैं। इस पुस्तक के पढ़ने मात्र से शरीर में बल, ओज, बुद्धि, उत्साह आदि की वृद्धि और अपने-अपने कार्य में तत्परता हो सकती है। आत्मबल की इच्छा हो तो इसको एक बार अवश्य पढ़िये। वर्षों से गिरा हुआ प्राणी भी इसके पढ़नेसे बिना सहारे स्वयं खड़ा हो सकता है। मू. १)

प्रकाशक-भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी १.

521/-
MN
27/-